Ll.b.
2semester
Legal history.

साइमन कमीशन तथा गोलमेज सम्मेलन

(SIMON COMMISSION & ROUND TABLE CONFERENCES)

भारत शासन अधिनियम, 1919 की धारा 84-क में यह प्रावधान था कि इस अधिनियम के प्रभावी होने के 10 वर्ष बाद सरकार एक आयोग नियुक्त करेगी जो सन् 1919 में स्थापित की गई उत्तरदायी सरकार की कार्य-प्रणाली की सफलता पर विचार करेगा तथा यह रिपोर्ट देगा कि इस पद्धति को आगे विस्तृत किया या उसे निर्बन्धित किया जाए। तथापि इस अवधि के पूर्व ही भारत की राजनीतिक स्थिति में इतनी शीघ्रता से परिवर्तन हुए कि सन् 1919 के सुधारों को सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सका।

भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध चल रहे देशव्यापी आंदोलन को देखते हुये ब्रिटिश सरकार ने सन् 1917 में जस्टिस राउलेट (Rowelatt) की अध्यक्षता में चार अन्य सदस्यों की एक समिति[1] गठित की जो आंदोलनकारियों से कारगर ढंग से निपटने के उपाय सुझाए। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 10 जनवरी 1919 को प्रस्तुत की जिसके सुझावों पर आधारित एक अधिनियम पारित किया गया जिसे राउलेट एक्ट[2] कहा गया। इस अधिनियम में यह प्रावधान था कि राजनीतिक विद्रोहियों एवं अपराधियों के प्रकरणों को शीघ्रता से निपटाने हेतु उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों का एक विशिष्ट न्यायालय स्थापित किया जाए तथा इस न्यायालय का निर्णय अंतिम हो जिसके विरुद्ध अपील नहीं हो सकती थी। इस अधिनियम द्वारा प्रांतों की सरकारों को यह शक्ति प्रदान की गई वे संदेहास्पद क्रांतिकारियों का पता लगाकर उन्हें बिना वारंट गिरफ्तार करें और उन्हें राजनीतिक अपराधी घोषित करते हुए उनके विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही करे।

इस अधिनियम के अधीन पुलिस को दी गई असीमित शक्तियों के कारण भारतीय जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया तथा सन् 1919 के भारत शासन अधिनियम के अन्तर्गत प्रस्तावित प्रांतों में लागू की जाने वाली द्वैध शासन पद्धति (Dyarchy) पूर्णत: दोषपूर्ण साबित हुयी। इसके प्रमुख कारण निम्नानुसार थे—

1. राउलेट एक्ट—एक काला कानून—राउलेट एक्ट लागू किये जाने के फलस्वरूप अंग्रेजी सत्ता के प्रति भारतीयों का रोष बढ़ गया तथा उनकी दमनात्मक कार्यवाहियों से लोग आतंकित हो उठे। इस अधिनियम द्वारा भारतीयों की स्वतंत्रता पर सीधा प्रहार किया गया था इसलिए इसका सभी जगह कड़ा विरोध हुआ तथा इसे 'काले कानून' की संज्ञा दी गई।

राउलेट एक्ट (Rowalett Act) के अधीन ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई दमनात्मक कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप देशव्यापी आंदोलन और हड़तालें हुईं। महात्मा गांधी ने इसी समय भारत की राजनीति में प्रवेश किया था। उन्होंने 30 मार्च 1919 को इस 'काले कानून' के विरोध में पूरे देश में हड़ताल का आह्वान किया। बाद में यह तिथि बदल कर 6 अप्रैल 1919 कर दी गई थी। परिणामस्वरूप महात्मा गाँधी को 8 अप्रैल को दिल्ली के निकट पलवल स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया। गाँधी जी की इस गिरफ्तारी से जनता अधिक भड़क उठी, अत: अहमदाबाद, दिल्ली और पंजाब में उपद्रव हुए।

2. जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड—पंजाब में क्रांतिकारियों की गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने जुलूस निकालने तथा सार्वजनिक सभाएँ आयोजित करने पर पाबंदी लगा दी। तथापि इन कानूनों के बावजूद 9 अप्रैल को रामनवमी के दिन अमृतसर में एक विशाल जुलूस निकाला गया जिसके परिणामस्वरूप डॉ० किचलू तथा डॉ० सत्यपाल को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके विरोध में 10 तथा 11 अप्रैल 1919 को अमृतसर में हत्या, लूट तथा आगजनी की अनेक घटनाएँ हुईं। क्रांतिकारियों के दमन के लिये

---

1. इस समिति के अन्य सदस्य थे कुमार स्वामी शास्त्री, चंदर मित्तर तथा दो अन्य अंग्रेज अधिकारी।
2. यह अधिनियम 21 मार्च 1919 को पारित हुआ था तथा इसका वास्तविक नाम 'Anarchical & Revolutionery Crimes Act, 1919' था।

11 अप्रैल को जनरल डायर (Dyer) स्वयं अमृतसर आया और उसने सेना का संचालन स्वयं अपने हाथ में ले लिया। 13 अप्रैल को वैसाखी के दिन सरकार की दमनकारी नीतियों के विरोध में अमृतसर के जलियाँवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा आयोजित हुई जिसमें हजारों महिलाएँ, पुरुष, बाल-वृद्ध एकत्रित थे। जनरल डायर ने इस सभा को भंग करने हेतु बिना किसी पूर्व चेतावनी के गोलियाँ चलाने के आदेश दिये जिसमें सहस्त्रों निर्दोष व्यक्ति मारे गए। इसके बाद अमृतसर में अनेक जगह उपद्रव हुए। भारतीय समाचार-पत्रों ने पंजाब के लेफ्टीनेंट गवर्नर सर माइकेल ओ डायर के शासन तथा भारत सरकार की आतंकवादी नीतियों तथा जन-विरोधी कार्यवाहियों की तीव्र भर्त्सना की तथा गवर्नर जनरल चेम्सफोर्ड को इंग्लैंड बुलाये जाने की माँग की। जनरल डायर के विरुद्ध जलियाँवाले बाग की निर्मम हत्याओं के लिए अभियोग चलाए जाने की भी माँग की गई।

ब्रिटिश सरकार को बाध्य होकर उपर्युक्त घटना की जाँच के लिए अक्टूबर 1919 में लार्ड हण्टर की अध्यक्षता में जाँच समिति का गठन करना पड़ा। समिति ने अमृतसर की अमानवीय घटना के लिए क्रूर सैनिकों की घोर निंदा की परन्तु ब्रिटिश सरकार पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और इस घटना के लिए दोषी अधिकारियों को परित्राण अधिनियम (Indemnity Act) के अन्तर्गत दोषमुक्त कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप भारतीयों का विश्वास ब्रिटिश राज के प्रति पूर्णत: उठ गया और गाँधी जी ने असहयोग आंदोलन प्रारंभ कर दिया।

3. खिलाफत आंदोलन—इसी समय खिलाफत आन्दोलन भी प्रारंभ हुआ जो मुसलमानों द्वारा अंग्रेजी सरकार की तुर्कों के प्रति नीति के विरुद्ध रोष प्रकट करने हेतु आयोजित किया गया था। युद्ध काल में ब्रिटिश सरकार द्वारा तुर्कों को यह आश्वासन दिया गया था कि युद्ध समाप्त होते ही उन्हें आत्म-निर्णय का अधिकार दिया जायगा। परन्तु युद्ध के बाद इन आश्वासनों के बावजूद तुर्की को छिन्न-छिन्न कर ब्रिटेन तथा फ्रांस में मिला लिया गया। उसकी दुर्दशा से भारतीय मुसलमान ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हो गए और 20 मार्च 1920 को अखिल भारतीय खिलाफत समिति की स्थापना के साथ यह आंदोलन प्रारंभ हुआ। यह आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा शुरू किये गये असहयोग आंदोलन का एक अंग बन गया।

4. असहयोग आंदोलन—सन् 1921-22 की अवधि में गाँधी का अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन चरम सीमा पर था। सन् 1922 में बारदोली से असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ। हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर समान रूप से इन आंदोलनों में भाग लिया। 5 फरवरी सन् 1922 को गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा ग्राम में एक उग्र भीड़ ने 21 पुलिस कर्मियों तथा एक पुलिस निरीक्षक को थाने में आग लगाकर जीवित जला दिया। गाँधी जी इस घटना से बहुत दुखी हुए और उन्होंने क्षुब्ध होकर असहयोग आंदोलन त्याग दिया। अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने इस स्थगन के निर्णय को दुर्भाग्यपूर्ण बताते हुए गाँधीजी द्वारा जल्दबाजी में लिया गया निर्णय माना तथा उनकी आलोचना की। ब्रिटिश सरकार ने इस मौके का भरपूर लाभ उठाते हुए गाँधीजी को अहमदाबाद में छ: वर्ष के कारावास की सजा सुना दी।

5. स्वराजियों द्वारा अवरोधक अभियान (Obstructionist Policy by Swarajists)—स्वराज पार्टी (Swarajists) ने राष्ट्रीय आंदोलन को आगे बढ़ाते हुए सन् 1919 की सांविधानिक सुधार योजना को संशोधित या भंग किये जाने की माँग की। सन् 1922 में सविनय अवज्ञा आंदोलन (Civil Disobedience Movement) के विफल हो जाने से कांग्रेसी नेताओं को गहरा आघात पहुँचा। अत: सितंबर 1923 में दिल्ली में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में कुछ राष्ट्रवादियों ने पंडित मोतीलाल नेहरू तथा सी० आर० दास के नेतृत्व में स्वराज-दल के रूप में संगठित होने का निर्णय लिया। स्वराज्य पार्टी ने अपने 14 अक्टूबर 1923 के प्रस्ताव में सरकारी नीतियों तथा कार्यवाही में निरन्तर बाधाएँ खड़ी करने का संकल्प किया ताकि विधान-परिषदों में सरकार के विरोध से उसका कामकाज ठप्प पड़ जाए। इस उद्देश्य से स्वराजियों ने सन् 1923 के आम चुनाव में अपने उम्मीदवार खड़े कर विधान परिषदों में अपना बहुमत प्राप्त कर लिया। विशेषत: बंगाल और मध्य प्रांत में स्वराजियों के बहुमत के कारण सरकार के सांविधानिक कार्य निष्प्रभावी हो गए। 5 फरवरी 1924 को स्वराजियों की ओर से सरकार को एक ज्ञापन दिया गया जिसमें सन् 1919 के सांविधानिक ढाँचे में परिवर्तन की माँग की गई थी तथा यदि आवश्यक हो तो इस हेतु एक आयोग का गठन किये जाने का प्रस्ताव रखा गया था। स्वराज्य-पार्टी भारत में स्वशासन तथा अधिक्षेत्र-प्रास्थिति (Dominion Status) तथा प्रांतों की

स्वायत्तता की माँग कर रही थी परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। तत्पश्चात् 8 फरवरी 1923 को पं० मोतीलाल नेहरू ने यह संशोधन प्रस्तुत किया कि भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना हेतु सन् 1919 की सांविधानिक व्यवस्था को तत्काल पुनरीक्षित करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाएँ और यदि आवश्यक हो, तो भारतीय प्रतिनिधियों का एक गोलमेज सम्मेलन आयोजित किया जाए जो अल्पसंख्यकों के हितों को ध्यान में रखते हुए एक विस्तृत संविधानिक योजना तैयार करे।[1]

स्वराज पार्टी के नेता दीवान बहादुर टी० रंगाचारियर ने दिनांक 5 फरवरी, 1924 को सन् 1919 के अधिनियम में आवश्यक संशोधन किये जाने की मांग दोहराई परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसका विरोध किया। अत: पंडित मोतीलाल नेहरू ने गवर्नर-जनरल ऑफ इंडिया को एक कड़ा पत्र लिखते हुए मांग की कि उक्त अधिनियम को तत्काल पुनरीक्षित किया जाए तथा भारत में उत्तराधिकार शासन (responsible government) स्थापित करने हेतु उचित कदम उठाए जाएं। इसके प्रत्युत्तर में गवर्नर जनरल ने स्वराजियों द्वारा रखी गई मांग को खारिज करते हुए यह अवश्य स्वीकार किया कि सरकार अधिनियम के बारे में उचित कमियों तथा शिकायतों के विरुद्ध जांच प्रारंभ करने को तैयार है ताकि इनका निवारण किया जा सके।

सुधार जाँच समिति या मुदीमन समिति, 1924 (Mudiman Committee)

उपर्युक्त परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार को विवश होकर विधान सभा में सन् 1919 के सुधारों पर विचार करने के लिए एक जाँच समिति की घोषणा करनी पड़ी। इस जाँच समिति के अध्यक्ष एलेक्जेन्डर मुदीमन थे, जो गवर्नर-जनरल की कार्यपालिका परिषद् के सदस्य थे। समिति को सन् 1919 के अधिनियम के कार्यान्वयन में उत्पन्न दोषों पर विचार करना था ताकि उनमें सुधार किया जा सके। इस समिति में सरकारी बहुमत था तथापि इसमें सर तेज बहादुर सप्रू तथा मोहम्मद जिन्ना को भी शामिल किया गया था। मुदीमन समिति ने अपने प्रतिवेदन में द्वैध-शासन पद्धति को संशोधनों के साथ लागू रखने की सिफारिश की। समिति के विचार में सन् 1919 की सांविधानिक सुधार योजना की असफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित थे:—

(1) असहयोग आंदोलन के कारण निर्वाचन-मंडल को उचित प्रशिक्षण नहीं दिया जा सका था। स्वराज्य-पार्टी ने सांविधानिक सुधारों को लागू करने में बाधाएँ पहुँचाई थीं।

(2) सन् 1919 के सुधार ऐसे समय लागू किये गये थे जबकि सरकार के पास वित्त का अभाव था। अत: केन्द्र और प्रांतों में कार्य ठीक तरह से नहीं हो पाया।

(3) देश की अधिकांश जनता अशिक्षित होने के कारण सुधारों के बारे में उसे संदेह था और आंदोलनकारियों ने इसका अनुचित लाभ उठाया।

(4) भारतीयों में आपसी फूट के कारण प्रांतों में द्वैध-शासन पद्धति सफल नहीं हो सकी।

मुदीमन समिति की रिपोर्ट 7 सितंबर 1925 को विधान सभा में प्रस्तुत की गई। पंडित मोतीलाल नेहरू ने सन् 1919 के अधिनियम की कड़ी आलोचना की तथा यह मांग दोहराई कि 'रॉयल आयोग' की नियुक्ति कर भारत में उतरदायी सरकार की स्थापना की जाए, परन्तु बहुमत ने प्रचलित व्यवस्था को संशोधनों सहित जारी रखे जाने का समर्थन किया। तथापि इस पर मतदान होने पर सरकारी बहुमत 75 के विरुद्ध 45 मतों से गिर गया और सरकार को विवश होकर भारत में उत्तरदायी सरकार की संभावनाओं तथा उसकी सीमाओं के विषय में विचार करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति करनी पड़ी।